International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 27-28

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 27-28
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-09-2018
Accepted: 09-10-2018

डॉ. रुद्रेतपाल आर्य
प्राचार्य, एच0 एन0 डी0 कॉलेज,
बघराई, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. रुद्रेतपाल आर्य
प्राचार्य, एच0 एन0 डी0 कॉलेज,
बघराई, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

अर्थ का नित्यत्व

डॉ. रुद्रेतपाल आर्य

प्रस्तावना

वैयाकरणों ने 'आकृति' और 'द्रव्य' रूप पदार्थों को नित्य माना है।[1] महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य के प्रथम आह्निक में इस पर विशद चर्चा की है। वे कहते हैं कि 'आकृतिर्हि नित्या, द्रव्यमनित्यम्'[2] अर्थात् जाति रूप आकृति पदार्थ सदा ही नित्य है। इस विषय में भर्तृहरि का मत है कि जातिरूप आकृति पदार्थ को स्वीकार करने वाले सभी चिन्तक इसकी नित्यता के सम्बन्ध में एकमत हैं।[3] घटत्वादि आकृति नित्य है, क्योंकि अभिव्यंजक स्वाश्रय घटव्यक्ति आदि के विनष्ट हो जाने पर भी उसकी उपलब्धि अन्य घट व्यक्ति में हो जाती है।[4] यह आकृति अनित्य द्रव्यों के माध्यम से मात्र अभिव्यक्त होती है। उसका कभी भी 'अपूर्वोत्पाद' और 'विनाश' नहीं होता है।[5] सभी पौरस्त्य दार्शनिक इसके भावाभाव को न मानकर केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' को स्वीकार करते हैं। 'मथुरा' आदि स्थानों पर पूर्वदृष्ट कपिल और कृशकाय बालक को पाटलिपुत्र आदि में पील, स्थूल और हृष्ट–पुष्ट पुरुष के रूप में देखकर यह प्रत्यभिज्ञा होती है कि यह पुरुष वही है जो पहले दुर्बल और कपिल बालक के रूप में देखा गया था। दृष्टार्थ का यह प्रत्यभिज्ञान आकृति के एकत्व व नित्यत्व को सूचित करता है।[6] किंच एक ही आश्रय द्रव्य में 'स एव यज्ञदत्तो योऽन्यो यज्ञदत्तात्' इत्यादि रूप तत्त्वप्रतीति अर्थात् यह वही यज्ञदत्त है तथा अन्यत्वप्रतीति 'जो यज्ञदत्त से अन्य है' का युगपत् न होना भी यही सिद्ध करता है कि 'आकृति' एक तथा 'अविनाशी है।[7]

जैसा कि पूर्व में कहा गया है वैयाकरणों का यह जातिपदार्थ महासत्तारूप महासामान्य है, जो संसर्गानित्यता, विपरिणामनित्यता और वस्तुविनाशनित्यता के अभावरूप नित्यत्व के कारण कूटस्थ नित्य है।[8] परन्तु व्यवहारकाल पर्यन्त आगमापायी घटाादि व्यक्तियों के मध्य एकाकार परामर्श की हेतुभूत ये घटत्वादि जातियाँ भी कूटस्थ रूप में अवस्थित होने से कूटस्थ नित्य हैं।

उभयपदार्थतावादी वैयाकरण जिस द्रव्य को 'पारमार्थिक–द्रव्य' मानते हैं, वह 'द्रव्य' भी नित्य है, क्योंकि सधर्मी द्रव्यों में पदार्थत्वेन स्थित वह संसर्गधर्मियों से मुक्त और निरुपाख्य है।[9] द्रव्य का यह रूप अवस्थित है तथा सधर्मी अनित्य द्रव्यरूप एक और नित्य है। आागमापायी द्रव्यव्यक्तियों में अनुस्यूत, वह परमार्थद्रव्य ध्रुव, कूटस्थ, अविचाली, अनपायी और 'उपजन, विकार, उत्पत्ति, वृद्धि, व्यय' आदि से रहित होने के कारण कूटस्थ नित्य है। भर्तृहरि ने आगम को प्रमाण मानकर अद्वैत तत्त्वरूप पारमार्थिक द्रव्यपदार्थ को ब्रह्मतत्त्व से अभिन्न माना है।[10] जगत् में सत्यत्वेन अवस्थित यह ब्रह्मतत्त्व ही जगत् की प्रतिष्ठा है।[11] वैयाकरणों का यही द्रव्यपदार्थ है। इत्यादि असत्योपाधियों से शब्द इसी असत्योपाध्यवच्छिन्न ब्रह्मतत्त्व का ही अभिधान करते हैं।[12] यह निरुपाधिक परमार्थिक द्रव्यरूप ब्रह्मतत्त्व शाब्दिक व्यवहारातीत है।

ध्येय है कि केवल भावरूप निर्देश ही नहीं अपितु अभावात्मक 'अनित्य' आदि शब्दों से भी अन्य शब्दों के समान ही वही नित्य, परमार्थ, द्रव्यरूप, ब्रह्मतत्त्व अभिहित होता है। भाव यह है कि शब्द का बाह्य पदार्थ जब 'अनित्य' अभाव रूप होता है, तब वह पदार्थों की अतीत, अनागत, अवस्थाओं की अपेक्षा से ही होता है, परन्तु अनित्य या अभाव शब्दों में भी वाच्य पदार्थ वह परमार्थ सत् 'द्रव्य' ही है।[13] जो ज्ञान की तरह नित्य एवं अखण्ड है।[14] यह उपाधिरहित पारमार्थिक द्रव्यरूप ब्रह्मतत्त्व शाब्दव्यवहार का विषय नहीं है, क्योंकि इसके स्वरूप के विषय में शब्द व्यापार सर्वथा अवरुद्ध हो जाता है। सभी प्रकार के शाब्दव्यवहारों से अतीत यह द्रव्यपदार्थ कूटस्थ–नित्य होने के कारण नित्य कहा जाता है।[15]

यहाँ यह भी अवगन्तव्य है कि भाषा में विद्यमान शब्द सदैव अर्थ का बोध नहीं कराते हैं, वे अनेकशः स्वरूप मात्र निबन्धन भी होते हैं। भाष्यकार ने 'स्वरूपमात्र' के पदार्थ होने की दशा में भी पदार्थ का नित्यत्व प्रतिपादित किया है। वे 'महाभाष्यम्' के पस्पशाह्निक में 'स्वरूपपदार्थ' को भी 'आकृति' कहते हैं। तदनुसार सुवर्ण आदि द्रव्य तो सत्य हैं, किन्तु उनकी रुचक आदि आकृतियाँ परिवर्तनशील हैं। यहाँ आकृति' का तात्पर्य जाति से न होकर 'स्वरूप' या 'अवयवसंस्थान' से है।

भाष्यकार ने आगमापायी अवयवसस्थानों को भी 'नित्य' माना है। यहाँ महाभाष्य में स्पष्ट कहा गया है कि 'कूटस्थनित्यता' ही नित्यता नहीं है, अपितु नित्य वह भी है जिसमें तत्त्व का विहनन नहीं होता है। यह नित्यत्व लौकिक दृष्टि से है, परमार्थ दृष्टि से नहीं। यही 'व्यवहाराश्रयनित्यता' है। घट आदि का अवयवसंस्थान भले ही नष्ट हो जाये, परन्तु 'घटत्त्वधर्म' का आश्रय ऐसा अवयवसंस्थान है जो विनष्ट नहीं होता है। इस प्रकार घटत्वधर्म के आश्रय अवयव संस्थान का प्रवाह व्यवहार में विच्छिन्न नहीं होता।[16] अतः पदार्थभूत यह स्वरूप या आकृतिरूप अवयवसंस्थान भी प्रवाहनित्यत्त्व या व्यवहारनित्यत्त्व के कारण से नित्य है।

इस प्रकार वैयाकरणों की दृष्टि उभयपदार्थतावादी है, वे जातिरूप आकृति पदार्थ तथा पारमार्थिक द्रव्यरूप पदार्थ को 'नित्य' मानकर अवयवसंस्थानरूप 'आकृति' को भी व्यवहार नित्य बतलाते हुए 'अर्थ' का सर्वथा नित्यत्व भी घोषित करते हैं।[17] उनके अनुसार व्याकरण 'सर्ववेदपारिषदम्' है, इसलिए इसमें समन्वयात्मक दृष्टि अपनायी गयी है। पतंजलि ने स्पष्ट कहा है कि वैयाकरणों को इससे क्या प्रयोजन कि यह 'नित्य' है, या 'अनित्य' है ? जो तत्त्व जिस भी दर्शन में अविहन्यमान है, वही 'पदार्थ' है और सदा ही 'नित्य' है।[18] इसी तथ्य को और भी स्पष्टता प्रदान करते हुए वे कहते हैं – हम शब्द प्रमाणवादी हैं, अतः शब्द जिसका अभिधान करता है, हमारे लिए वही अर्थ है। वस्तु भले ही नित्य हो या अनित्य हो शब्द कभी अपने अभिधेय से शून्य नहीं हो सकता है। वह अभिधेय बाह्यसत्तायुक्त 'घट' में जैसे नित्य है, वैसे ही बाह्य सत्ताशून्य, 'शशविषाण' आदि शब्दों में भी अभिधेयात्मना 'नित्य' स्थित है, क्योंकि शब्द सदैव अपने अभिधेयार्थ से आविष्ट हुआ ही उपलब्ध होता है।[19] यह यहाँ विशेषरूप से ध्येय है कि वस्त्वर्थ के 'अनित्य' होने पर भी अभिधेयार्थ सदैव 'नित्य' ही होता है।[20]

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह निर्गत होता है कि व्याकरण सम्मत पदार्थ की दो प्रकार की सत्ताएँ हैं–1. बाह्यसत्ता 2. बौद्धसत्ता। शब्द का सम्बन्ध अर्थ की बौद्धसत्ता से ही होता है, बाह्यसत्ता या वस्त्वर्थ से नहीं।[21] जब–जब शब्द उच्चारित होता है, तब–तब अर्थाकार बुद्धि उत्पन्न होती है।[22] इसलिए यह बुद्धि में प्रतिभासित पदार्थ प्रवाह नित्यता से 'नित्य' है। पदार्थ का इस बुद्धिरूप सत्ता से कभी वियोग नहीं होता सर्वथा असत् तथा तुच्छ समझे जाने वाले 'शशविषाण, अलातचक्र, बन्ध्यापुत्र' आदि पदार्थों का बुद्धिस्थ–सत्ता में आकारोल्लेख होता ही है। अतः वैयाकरणों का पदार्थ, बाह्यसत्ता के भावात्मक या अभावात्मक होने पर भी सदैव 'नित्य' ही है।

'अर्थ' की नित्यता सम्बन्धी वैयाकरणों की उक्त धारणा का अतिसंक्षेप में वर्णन करते हुए कैयट ने लिखा है – ''द्रव्यं हि नित्यम्' इति। असत्योपाध्यवच्छिन्नं ब्रह्मतत्त्वं द्रव्यशब्दवाच्यमित्यर्थः। आकृतिरिति। संस्थानम्। ब्रह्मदर्शने च गोत्वादिजातेरप्य–सत्यत्वादनित्यत्वम्। 'आत्मैवेदं सर्वमिति' श्रुतिवचनात्। न क्वचिदुपरतेति। अनभिव्यक्तेत्यर्थः। अद्वैतेन लोके व्यवहाराभावाद् व्यवहारे चाऽऽकृतेरेकाकारपरामर्शहेतुत्वानिन्नत्यत्वं अथवेति असत्यत्वेऽपि तत्त्वतो लोक व्यवहाराश्रयणेन जातेर्नित्यत्वं साध्यते। यन्नित्यमिति। बुद्धि प्रतिभासः शब्दार्थों यदायदा शब्द उच्चरितस्तदातदार्थाकारा बुद्धिरूपजायते इति प्रवाहनित्यत्वादर्थस्य नित्यत्वमित्यर्थः।'[23]

सन्दर्भ

1. द्र0 महाभाष्य पस्पशाह्निक।
2. द्र0 वहीं, पस्पशाह्निक।
3. महाभाष्यदीपिका, पृ0 26 'सर्वेषामेवव्यक्तिरिक्ता जातिरित्येववादिना नित्यत्वं प्रत्यविप्रतिपत्तिः।'
4. महाभाष्य, पस्पशाह्निक, 'नित्याकृतिः। ''कथं न क्वचिदुपरतेतिकृत्वा सर्वत्रो परता भवति।''
5. द्र0 महाभाष्यदीपिका, पृ0 26 'सात्वनित्यैर्द्रव्यादिभिर्व्यज्यते इति इयान् व्यापारो द्रव्यादीनाम्।
6. महाभाष्यदीपिका, पृ0 26 'इह तु मथुरायां बालं दुर्बलं कपिलं द्रष्ट्वा पाटिलपुत्रे नीलं स्थूलमुपलभ्य स एवायमर्थों नीलत्वादि गुणयुक्तो यो मया बालत्वादियुक्तो दृष्ट इति प्रत्यभिज्ञानादस्तित्वमवसीयते, न चादृष्टे प्रत्यभिज्ञानमस्ति। नूनं दृष्टः प्रागर्थों प्रत्यभिज्ञायत इति।'
7. (क)– महाभाष्यदीपिका पृ0 26 'तस्याश्च तत्वान्यत्व प्रख्ययोर्युगपत् कार्यत्वमेकस्मिन्नर्थे न संभवति। यथा स एव यज्ञदत्तो योऽन्यो यज्ञदत्तादिति।
(ख)– वहीं 'तत्र तत्वान्यत्व प्रख्ययोरविकलयोरेकस्मिन् आश्रये विरोधादाकृतेरेकत्वमविनाशोऽस्ति इत्यवकल्पन्ते।'
8. (क)–महाभाष्य पस्पशाह्निक, पृ0 31 'ध्रुवं कूटस्थमविचात्यनपायोपनविकार्यनुत्पत्यवृद्धय व्ययोगि यत् तन्नित्यम्।'
(ख)–महाभाष्यदीपिका पृ0 28 'त्रिविधा ह्यनित्यता। संसर्गानित्यता, विपरिणामनित्यता वस्तुविनाशनित्यताच। अतो विपर्ययेण नित्यता।
9. महाभाष्यदीपिका, पृ0 2 'द्रव्यपदार्थिकस्य हि गोशब्दः केनचिद् धर्मेण असंसृष्टस्य निरुपाख्यस्य द्रव्यस्य न तु विषाणादयः संसर्गिणोऽर्थभेदकाः।'
10. महाभाष्यदीपिका, पृ0 27, 'नित्यः पृथिवीधातुः। पृथिवीधातौ किं सत्यम्? विकल्पः। विकल्पे किं सत्यम्। ज्ञानम्। ज्ञाने किं सत्यम्। ऊँ अथ तद् ब्रह्म।'
11. छान्दोग्योपनिषद्, 6.1.4 'वाचारम्भणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।'
12. कैयट–प्रदीप, पृ0 30 'असत्योपाध्यवच्छिन्नंब्रह्मतत्त्वं द्रव्यशब्दवाच्यमित्यर्थः।'
13. महाभाष्यदीपिका, पृ0 27, 'तत्र यावन्तो निर्देशा अनित्य इति वा नित्य इति वा सर्व एवैतेऽवस्थापेक्षाः ताश्चानन्यास्तस्मादिति।'
14. महाभाष्यदीपिका, पृ0 27 'यथैव च स्वप्नोऽन्यद्वा ज्ञानं त्रैलोक्यमिति वा, गृहमिति वाऽनाकारं पर्वतादिभेदैरविभक्तं पर्वतादिप्रदेशेएवमसावर्थः।'
15. वहीं, अतः परं शब्दार्थव्यवहारो निवर्तते। व्यवहारातीतोऽयमर्थइति। स पुरुषादि सर्वान् शब्दव्यवहारानतिक्रान्तो नित्यः परिकल्प्यते।'
16. नागेश–उद्योत, पस्पशाह्निक, 'प्रवाहनित्यता चानेनोक्ता। तन्नाशेऽपितद्धर्मो न नश्यति, आश्रयप्रवाहविच्छेदात्।'
17. महाभाष्यदीपिका, पृ0 21 'अर्थोऽपि येषामाकृतिरभिधेया सा नित्या। द्रव्येऽपि पदार्थे व्यवहारानित्यता।'
18. महाभाष्य, पस्पशाह्निक, पृ0 32 'अथवा किं न एतेनेदं नित्यमिदमनित्यमिति। यन्नित्यं तं पदार्थमत्वैष विग्रहः क्रियते ''सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे चेति।''
19. वहीं, 'अर्थश्चास्माकं य शब्देनाभिधीयते। तत्र वस्तु यदिनित्यं यद्यनित्यं शब्दस्तु न कदाचिदभिधेयश्चानित्यं इति शब्दो नार्थे प्रवृत्तपूर्वः तत्र नित्यकालं स्वरूपेण व्यावेशाद्यश्च घटशब्दो यश्चशशविषाणशब्दः सर्वएते सर्वकालमर्थेरशून्यां व्याविष्टा एवार्थरूपेण.....।''
20. वाक्यपदीयम्, 3.3.34 'अनित्येष्वपि नित्यत्वंमभिधेयमात्मनास्थितम् अनित्यत्वं स्वशक्तिर्वा सा च नित्यान्न भिद्यते।'
21. (क)–नागेश उद्योत, पस्पशाह्निक, 'बाह्य पदार्थों न शाब्दबोधे विषयः किन्तु बौद्धः।'
(ख)–हेलाराज वाक्यपदीयम्, 3.3.5 'बुद्धिप्रतिभास्येव ह्याकरः शब्दार्थों न वस्त्वर्थः।'
(ग)– महाभाष्यदीपिका, पृ0 250, 'व्याकरणे तु शब्दव्यवहारः प्रसिद्धोलोकेऽर्थाः।'
22. कैयट– प्रदीप, पस्पशाह्निक, 'बुद्धिप्रतिभासः शब्दार्थः। यदा– यदाशब्द उच्चारितस्तदा तदाऽर्थकारा बुद्धिरूपजायत इति प्रवाहनित्यत्वादर्थस्य नित्यत्वम्।'
23. कैयट– प्रदीप, पस्पशाह्निक।